अक्षय ऊर्जा की व्यावहारिकता

के. जयलक्ष्मी

अक्षय ऊर्जा ही हमारा भविष्य है मगर इसके बावजूद हमें सावधानीपूर्वक इस बदलाव को चरणबद्ध तरीके से और ज़रूरत के अनुसार ही लाना होगा, जल्दबाज़ी में या लालचवश नहीं।

कोयले से मिलने वाली बिजली और परमाणु ऊर्जा परिदृश्य से जल्दी बाहर होने वाले नहीं है। 2050 से पहले तक जीवाश्म ईंधन को हटाकर साफ-सुथरी ऊर्जा ला पाना सम्भव नहीं लगता। साफ-सुथरी ऊर्जा की रुमानियत में व्यवहारिकता का मिश्रण ज़रूरी होगा। आज के हालात में यह कथन राजनैतिक रूप से तो सही नहीं है मगर इसमें सच्चाई है।

अक्षय ऊर्जा के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा आधारभूत संरचना का अभाव है। पारंपरिक ऊर्जा ठोस, द्रव या गैसीय बायोमास के रूप में संरक्षित है जिसके उपयोग के लिए सिर्फ निष्कर्षण की तकनीक और परिवहन की दरकार है। दूसरी ओर, वैकल्पिक ऊर्जा के संग्रहण या रूपांतरण के लिए उपकरणों और बुनियादी ढांचे की ज़रूरत होगी।

कच्चे माल से लेकर उत्पादन तक वैकल्पिक ऊर्जा आपूर्ति की पूरी श्रृंखला (खनन, परिवहन, निर्माण और रखरखाव) आज भी जीवाश्म ईंधन पर ही आश्रित है। फिलहाल जीवाश्म ईंधन की मदद के बगैर कोई वैकल्पिक ऊर्जा नहीं प्राप्त की जा सकती और न ही इससे ऐसे उपकरण बनाए जा सकते हैं जो वैकल्पिक ऊर्जा उत्पादन के लिए ज़रूरी हैं।

यहां और भी कई मुद्दे हैं जो इस बत को साफ कर देते हैं कि अलग-अलग परिस्थितियों को स्वतंत्र रूप से देखा जाना चाहिए और हरेक परिस्थिति के लिए सही तरीकों का सम्मिश्रण किया जाना चाहिए।

आइए हम उदाहरण के रूप में सौर फोटो-वोल्टेइक की बात करते हैं। यह बात सही है हमारे देश के कई भागों में धूप की तीव्रता काफी ज़्यादा है - भारत की भूमि पर प्रति वर्ष 5000 ट्रिलियन किलोवाट घंटे सौर ऊर्जा पहुंचती है और इसमें से 1 प्रतिशत का इस्तेमाल भी 2030 में होने वाली ऊर्जा की खपत को पूरा कर सकता है। मगर इसमें कई मुद्दे छिपे हुए हैं।

इंटरनेशनल एनर्जी एजेंसी के अनुसार 2050 तक सौर ऊर्जा से विश्व की कुल बिजली आपूर्ति का एक चौथाई हिस्सा प्राप्त किया जा सकता है। सौर फोटो-वोल्टेइक और सौर ऊर्जा के संकेंद्रण के ज़रिए हम ऊर्जा सुरक्षा तो प्राप्त कर ही सकते हैं साथ ही इससे प्रति वर्ष ऊर्जा से सम्बंधित 6 अरब टन कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को भी रोका जा सकता है। इंटरनेशनल एनर्जी एजेंसी को उम्मीद है कि उत्तरी अमरीका सौर ऊर्जा संकेंद्रण से प्राप्त बिजली का सबसे बड़ा उत्पादक होगा, जो अपने कुल उत्पादन का आधा हिस्सा युरोप को निर्यात करेगा। इसके बाद भारत और उत्तरी अफ्रीका का नंबर होगा।

प्रदूषण

अर्थव्यवस्था के लिए तो निर्यात अच्छी बात है पर इकॉलॉजी पर इसका क्या असर होगा? सोलर पैनल बनाने का तरीका अर्धचालक उपकरण बनाने जैसा ही है। इसमें भी सिलिकॉन टेट्राक्लोराइड, धूल और सिलिकॉन की सिल्लियां काटने से बचे नैनों कण जैसे विषाक्त अवशेष भी निकलेंगे और साथ ही सल्फर हेक्साफ्लोराइड जैसी कुछ ग्रीन हाउस गैसें निकलेंगी। एक टन सल्फर हेक्साफ्लोराइड 25,000 टन कार्बन डाइआक्साइड के बराबर ग्रीन हाउस प्रभाव पैदा करती है।

इनके चलते इकोसिस्टम में कई हानिकारक प्रभाव हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, सिलिकॉन टेट्राक्लोराइड मिट्टी पर प्रभाव डाल उसे फसल के लिए अनुपयुक्त बना

देता है और एक टन पॉलीसिलिकान के उत्पादन में चार टन सिलिकॉन टेट्राक्लोराइड बनता है।

क्रिस्टलीकृत सिलिकॉन सेल के निर्माण में सिलिकॉन के कण (जिसे कर्फ कहते हैं) कचरे के रूप में निकलते हैं। सिलिकॉन वेफर्स की धुलाई के दौरान 50 प्रतिशत पदार्थ हवा और पानी में चला जाता है। यह मज़दूरों में सांस सम्बंधी तकलीफ पैदा कर सकता है क्योंकि सिलिकॉन की धूल सांस के लिए हानिकारक होती है। क्रिस्टलीकृत सिलिकॉन सेल के निर्माण के लिए सिलिका को उच्च ताप पर परिष्कृत किया जाता है ताकि उसमें से ऑक्सीजन निकल जाए। इसके बाद ही धातुकर्म ग्रेड का सिलिकॉन प्राप्त होता है। क्रिस्टलीकृत सिलिकॉन सेल निर्माण की प्रक्रिया में एक अति विस्फोटक गैस सिलेन भी निकलती है।

क्या हवा और पानी में प्रदूषण की इस मात्रा को देखते हुए निर्यात को अच्छा माना जा सकता है?

यह ज़रूरी है कि हम इस पूरी प्रक्रिया को एक साथ देखें। हमें किसी भी उत्पाद के पूरे जीवन चक्र को देखना होगा। उत्पादकों के लिए नियम बनाने की भी ज़रूरत है ताकि वे अपने लाभ के बरक्स जोखिमों का भी आकलन करने को विवश हों।

इससे भी बड़ा मुद्दा ऐसे नियोजन का अभाव है जिसमें कोई संयंत्र लगाकर उत्पादन शुरू करने से पहले यह पता लगाया जा सके कि आखिर इसकी मांग है कहां। किसी स्थान पर विशाल फोटोवोल्टेइक अधोरचना तैयार करने के लिए यह कारण पर्याप्त नहीं माना जा सकता कि वहां खाली जगह पड़ी है जबकि उसके लिए कच्चा माल कहीं दूर से ढोकर लाना होगा। इसकी जगह बेहतर होगा कि पहले इस बात की पड़ताल कर ली जाए कि वहां किस प्रकार की मांग है और उसकी सर्वोत्तम आपूर्ति किस स्रोत से हो सकती है। यही बात समुद्रों में स्थापित पवन ऊर्जा संयंत्रों पर भी लागू होती है। समुद्र में टरबइन लगा लेना तो ठीक है पर उस ऊर्जा को शहरों तक पहुंचाने में होने वाले खर्च का क्या करेंगे? क्या यह आर्थिक रूप से व्यावहारिक है? जर्मनी जैसे देश के अनुभवों के मद्देनज़र ऐसा नहीं है।

नई टेक्नॉलॉजी के उपयोग से पहले हम अन्य देशों के अनुभवों से सबक ले सकते हैं।

यह सवाल भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है कि किस प्रकार की गतिविधि के लिए किस ईंधन का उपयोग हो। क्या ग्रिड से आने वाली इतनी महंगी बिजली का उपयोग एयरकंडीशनर चलाने में किया जाए या फिर ठंडा-गर्म करने के लिए ऊर्जा का कोई और विकेंद्रीकृत इंतज़ाम किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, जर्मनी को देखें। वहां बिजली की सबसे अधिक खपत यातायात और उसके बाद रहवासी इलाकों में होती है। क्या नवीकरणीय ऊर्जा इसकी पूर्ति कर सकेगी? लगता है कि जैव ईंधन इस मामले में उपयुक्त है मगर उसमें उत्सर्जित कार्बन और इंडोनेशिया से उसके परिवहन का खर्च उसे अनुपयुक्त बना देते हैं।

थोक में नई तकनीक अपनाने से परहेज़ करना चाहिए। वही गलतियां दोहराने की बजाय बेहतर होगा कि उनसे सीखा जाए जिन्होंने शुरुआती दिनों में ये तकनीकें अपनाई थीं।

बड़े पैमाने पर अक्षय ऊर्जा अपनाने में धीमा चलने के आग्रह के कई और सशक्त कारणों पर लॉरेंस बर्कले लैब के विशेषज्ञों ने कुछ प्रकाश डाला है।

पैमाना और समय सीमा: वैकल्पिक ऊर्जा के स्रोतों की आपूर्ति एक निश्चित समय सीमा के अंदर, सही मात्रा में और वाजिब दाम पर होनी चाहिए। किन्तु वैकल्पिक ऊर्जा उत्पादन के जो भी प्रदर्शन सामने हैं उनसे ऐसे कोई संकेत नहीं मिलते कि उनसे बड़े पैमाने पर उत्पादन संभव है। ऊर्जा और उसके संसाधन, उनकी किस्म व मात्रा विकल्प की व्यावहारिकता का निर्धारण करते हैं। उदाहरण के रूप में देखें तो सौर फोटो-वोल्टेइक तकनीक के लिए गैलियम और इंडियम की ज़रूरत होती है। आधुनिक बैटरी लीथियम पर निर्भर होती हैं। ये सभी दुर्लभ और महंगे तत्त्व हैं।

व्यावसायीकरण: अगला मुद्दा यह है कि अक्षय ऊर्जा के स्रोत पूरी तरह से व्यावसायिक रूप में स्थापित होने से कितनी दूर हैं। इस काम में अभी 25 साल और लग सकते हैं।

रुक-रुककर ऊर्जा प्राप्ति: अक्षय ऊर्जा स्रोतों को लेकर विरोधियों का सबसे बड़ा आक्षेप इसमें रुक-रुककर

ऊर्जा प्राप्ति का है। इस समस्या का हल भंडारण है और इसके लिए कुछ आधुनिक तकनीकें उभरी हैं; जैसे संपीड़ित हवा का भंडारण, बैटरियां और सौर तापीय ऊर्जा संयंत्र में पिघले हुए लवण का उपयोग आदि। मगर प्रमुख समस्या ऊर्जा भंडारण और पुनःप्राप्ति के दौरान होने वाली ऊर्जा की हानि का है। इसके अलावा इन तकनीकों में ऊर्जा भंडारण की सघनता की भी सीमा है।

ऊर्जा घनत्व: ऊर्जा घनत्व ऊर्जा स्रोत की एक निश्चित इकाई में निहित ऊर्जा की मात्रा है। इस लिहाज़ से वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत कमज़ोर हैं।

17वीं और 18वीं शताब्दी में ऊर्जा के स्रोत के रूप में लकड़ी छोड़कर कोयले के उपयोग को हाथों हाथ लिया गया क्योंकि लकड़ी के बराबर वज़न का कोयला लकड़ी से दुगनी ऊर्जा देता था। इसी तरह 20वीं सदी में जहाज़ों में ईंधन के रूप में कोयले की जगह पेट्रोलेयिम अपनाने के पीछे भी यही कारण था। कोयले की तुलना में पेट्रोलियम का ऊर्जा घनत्व लगभग दुगना है। पेट्रोलियम ने यह सुविधा दी कि जहाज़ बार-बार ईंधन के लिए रुके बिना लम्बी यात्राएं कर सकते थे।

मोटर वाहनों में आंतरिक दहन इंजन अधिक क्षमता वाला नहीं होता। उसमें भी अगर ईंधन के रूप में एक किलोग्राम अत्यंत सम्पीड़ित गैसोलीन का इस्तेमाल करते हैं तो वह 1300 किलोग्राम वज़न को लगभग 17 किलोमीटर तक ले जा सकता है। लीथियम आयन बैटरी, जिस पर आज सबका ध्यान है और जिसकी मदद से हम बिजली से चलने वाले वाहन चलाना चाहते हैं, उसके एक किलोग्राम में केवल 0.5 मेगाजूल ऊर्जा होती है जबकि इतने ही गैसोलीन में 46 मेगाजूल। हम रोज़ाना बैटरी तकनीक में हो रहे विकास की खबरों से रूबरू होते रहते हैं मगर तथ्य यह है कि बैटरी ऊर्जा की सैद्धांतिक सीमा 3 मेगाजूल प्रति किलोग्राम है। गौरतलब है कि ऊर्जा का जितना ही संघनित रूप होगा उसे रखने और इस्तेमाल के लिए उतनी ही कम जगह की ज़रूरत होगी।

चूंकि कई वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों का ऊर्जा घनत्व जीवाश्म ईंधन की तुलना में काफी कम है, इसलिए अगर हम वैकल्पिक ऊर्जा का नियोजन बड़े पैमाने पर करना चाहते हैं तो उसके लिए काफी भूमि की ज़रूरत होगी और खर्च बढ़ेगा। उदाहरण के लिए, 1000 मेगावाट क्षमता का एक कोयला ऊर्जा संयंत्र लगाने के लिए 1 से 4 वर्ग किलोमीटर भूमि की आवश्यकता होगी। इसमें कोयले की खदान और उसके परिवहन के लिए ज़रूरी जगह शामिल नहीं है। इसके विपरीत इतनी ही ऊर्जा की क्षमता वाले फोटोवोल्टेइक संयंत्र के लिए 20 से 50 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र या यूं कहें कि एक छोटे शहर जितनी ज़मीन की ज़रूरत होगी। पवन ऊर्जा के लिए तो यह ज़रूरत बढ़कर 50 से 150 वर्ग किलोमीटर और बायोमास के लिए 4000 से 6000 वर्ग किलोमीटर तक पहुंच जाएगी।

एक लीटर गैसोलीन के उपयोग में जहां 2.5 गैलन पानी लगता है वहीं बायोमास और गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों के लिए पानी की ज़रूरत इससे कहीं ज़्यादा होती है।

एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा नेट ऊर्जा का है। ऊर्जा की वह मात्रा जो ऊर्जा उत्पादन में होने वाली खपत के बाद शेष रह जाती है उसे ही नेट ऊर्जा कहते हैं। यह ऊर्जा निवेश से ऊर्जा प्राप्ति बहुत ज़्यादा हो सकती है (उदाहरण के लिए 100:1, जिसका मतलब है प्रत्येक 100 इकाई ऊर्जा उत्पादन के लिए 1 यूनिट ऊर्जा खर्च की गई।) एक अध्ययन के अनुसार औद्योगिक समाज के लिए इसका न्यूनतम मूल्य 5:1 है। यानी ऊर्जा उत्पादन पर 20 प्रतिशत से ज़्यादा सामाजिक और आर्थिक स्रोत न्यौछावर नहीं किए जा सकते और यदि ऐसा किया गया तो औद्योगिक समाज की संरचना कमज़ोर होगी। ऊर्जा के ज़्यादातर वैकल्पिक स्रोतों में ऊर्जा निवेश से ऊर्जा प्राप्ति काफी कम है।

अंततः यह ज़रूर कहा जा सकता है कि हमें अक्षय ऊर्जा स्रोतों की ओर बढ़ना तो चाहिए और जल्द से जल्द बढ़ना चाहिए मगर इस बदलाव के लिए हमें सावधानी पूर्वक योजना बनानी चाहिए अन्यथा हम एक समस्या से बचने के चक्कर में दूसरी समस्या में फंस जाएंगे। ***(स्रोत फीचर्स)***